
प्रवचन नं. १३७ गाथा-६३ से ६७ तथा श्लोक ३७ दिनाङ्क १६-११-१९७८, गुरुवार
कार्तिक शुक्ल २, वीर निर्वाण संवत् २५०४

समयसार, ६३-६४ (गाथा का) भावार्थ। जीव-अजीव अधिकार है न? यहाँ जीव किसे कहना, उसकी बात है। जीव तो अनन्त-अनन्त गुण से अभेद है, वह जीव है। उसमें जितने रंग, राग और भेद तीनों ले लिये हैं। भाई ने-हुकमचन्दजी ने तीनों लिये हैं। राग, रंग से भिन्न, भेद से भिन्न-यह इसमें से निकाला है। रंग में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, शरीर, वाणी, मन, कर्म सब आ गया और राग में शुभ-अशुभराग, अध्यवसाय इत्यादि आये और भेद में निमित्त के लक्ष्य से अन्दर भेद पड़ता है। लब्धिस्थान कहे न! उस भेद से भी

निराली चीज़ है। आहाहा! जीव उसे कहते हैं कि जो भेद से भिन्न, राग से भिन्न, रंग से भिन्न है। आहाहा!

भावार्थ - यदि ऐसा माना जाय कि संसार-अवस्था में जीव का वर्णादि के साथ तादात्म्यसम्बन्ध है... ऐसा कोई कहे तो जीव तो मूर्तिक हुआ... आहाहा! ऐसे रंग, राग और भेद सब मूर्त है-ऐसा यहाँ तो कहते हैं। पुद्गल कहना है न? आहाहा! जीव तो मूर्तिक हुआ और मूर्तिकत्व तो पुद्गलद्रव्य का लक्षण है;... यदि आत्मा को रंगवाला, रागवाला, भेदवाला मानो तो वह लक्षण तो पुद्गल का है, तो जीव मूर्तिक लक्षणवाला हुआ तो आत्मा मूर्तिक हो जाता है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात की है।

भेद भी मूर्तस्वरूप है। राग, दया, दान, व्रतादि के विकल्प तो पुद्गल हैं, मूर्तिक हैं, रूपी हैं, अजीव हैं। आहाहा! उनसे तो जीव भिन्न है। यदि उसे मूर्तिक कहो तो मूर्तिक तो पुद्गलद्रव्य का लक्षण है। इसलिए पुद्गलद्रव्य ही जीवद्रव्य सिद्ध हुआ,... आहाहा! उसके अतिरिक्त कोई चैतन्यरूप जीवद्रव्य नहीं रहा। मूर्तिक से भिन्न कोई अरूपी अभेद चैतन्यतत्त्व रहा नहीं। आहाहा! यहाँ तो अभी राग के विकल्प दया-दान को अपना मानता है। आहाहा!

यहाँ तो कल वहाँ तक सूक्ष्म आया, बहिन की वाणी में नहीं? ज्ञेय निमग्न। आहाहा! भाषा देखो उनकी! शास्त्र-ज्ञान वह परज्ञेय है, वह कहीं वस्तु-स्वज्ञेय नहीं है। आहाहा! उसे भी यहाँ तो मूर्त कहकर पुद्गल कहा। आहाहा! भगवान आत्मा तो अखण्ड अभेद, जिसमें गुणभेद भी नहीं, पर्यायभेद भी नहीं; राग और रंग की तो बात ही क्या करना? आहा! ऐसे जीव को, अमूर्त प्रभु आत्मा को भेद और रंग, रागवाला मानना, वह तो मूर्तिक का स्वरूप है, वह तो पुद्गल का (स्वरूप है) तो आत्मा, पुद्गल हो गया। आहाहा! गजब सूक्ष्म!

एक ओर ऐसा कहना कि राग-द्वेष आदि पर्याय है, वह जीव में है; निश्चय से जीव में है ऐसा कहा। प्रवचनसार। यह पर्याय को सिद्ध करना है। ज्ञेय आत्मा की पर्याय में यह बात है, यह सिद्ध करना है। यहाँ तो त्रिकाली स्वभाव सिद्ध करना है। समझ में आया? दृष्टि का विषय जो अभेद चैतन्य है, वह यहाँ सिद्ध करना है। आहाहा! इसलिए मूर्तिक

पुद्गल का लक्षण है, वह यदि जीव में आ जाये तो जीव तो चैतन्यद्रव्य रहा नहीं। आहाहा!

और मोक्ष होने पर भी उन पुद्गलों का ही मोक्ष हुआ;... भेद और राग, रंग यदि आत्मा के हों तो वे तो मूर्तिक हुए, वे मोक्ष में भी रहेंगे। आहाहा! ऐसी बात! अन्य कोई चैतन्यरूप जीव नहीं रहा। इस प्रकार संसार तथा मोक्ष में पुद्गल से भिन्न ऐसा कोई चैतन्यरूप जीवद्रव्य न रहने से जीव का ही अभाव हो गया। आहाहा! राग, भेद और रंग, संहनन इत्यादि यदि आत्मा के हैं, ऐसा मानो तो आत्मा का तो अभाव हो जायेगा। आहा! आत्मा तो अभेद चैतन्यमूर्ति भगवान है। आहा! उसका अभाव हो जायेगा। आहाहा! कैसी बात की है, देखो न!

अब अभी तो ऐसा कहते हैं कि व्यवहारनय के जो रागादि हैं, उसका आचरण करने से अनुग्रह-आत्मा को लाभ होता है। आहाहा! बहुत अन्तर। गौतमस्वामी ने भी व्यवहार किया-ऐसा कहते हैं। परन्तु वह तो भेद से समझाया है। इसलिए कहीं उसके आश्रय से लाभ होता है और धर्म होता है, ऐसा कहा है? व्यवहार से समझाना है, दूसरा करे क्या? भेद से समझाया है। जयधवल में। यह तो पता नहीं, वहाँ चिह्न तो पहले से किया था, उस दिन पढ़ा, तब किया था। आहाहा! भेद से समझाये बिना शिष्य को समझ में नहीं आता, इस अपेक्षा से समझाया है। आहाहा! परन्तु वह भेद है, वह आश्रय करनेयोग्य है और आत्मा की चीज़ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ भेद को पुद्गल में डाल दिया। गजब बात है। आहाहा! आत्मा में रहते नहीं, अकेली अभेद वस्तु रहती है। आहाहा! लोग कुछ की कुछ गड़बड़ में अटक गये हैं। कोई कहीं, कोई कहीं, कोई कहीं (अटक गये हैं)। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप प्रभु में तो रंग नहीं, राग नहीं और भेद नहीं; उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। वह आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! इस प्रकार संसार तथा मोक्ष में पुद्गल से भिन्न ऐसा कोई चैतन्यरूप जीवद्रव्य न रहने से जीव का ही अभाव हो गया। अभाव हो गया। हो जायेगा, ऐसा नहीं कहा। इसलिए मात्र संसार-अवस्था में ही वर्णादि भाव जीव के हैं — ऐसा मानने से भी जीव का अभाव ही होता है। लो! आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! आहाहा! ऐसे चैतन्यस्वभाव को पकड़ने से

उपयोग बहुत सूक्ष्म होता है। आहाहा! स्थूल उपयोग में वह ज्ञात नहीं होता। आहाहा! बहुत सूक्ष्म! आहाहा! सूक्ष्म तो ठीक है, परन्तु मतिज्ञान का उपयोग बाहर पर में जाता है, वह भी नहीं। यहाँ तो जो उपयोग स्वयं को पकड़ता है वह सूक्ष्म है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

रंग, राग और भेदरहित चीज़ प्रभु... आहाहा! उसे पकड़ने के लिये उपयोग बहुत सूक्ष्म चाहिए। आहाहा! इसके बिना आत्मा पकड़ में नहीं आता। सम्यग्दर्शन तब होता है, जब सूक्ष्म उपयोग अन्दर में जाता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! ऐसी बात है भाई! देह की क्रिया, वाणी की क्रिया तो जड़ है। वह जड़ की क्रिया आत्मा करता है, ऐसा माने तो आत्मा जड़ हो गया। आहाहा! और राग भी जड़ तथा अजीव है। दया, दान, भक्ति, व्रत, पूजा, यात्रा का भाव राग है, वह तो अजीव है। वह अजीव, आत्मा का हो जाये तो आत्मा, अजीव हो जाये। आहाहा! समझ में आया? ऐसे भेद, ज्ञान की पर्याय में भेद, दर्शन की पर्याय में भेद, चारित्र की पर्याय में भेद... आहाहा! वे भेद भी अपना स्वरूप नहीं है। आहाहा! यदि वे स्वरूप हों तो भेद तो कायम आत्मा में रहेंगे। आहाहा! सिद्ध में तो है नहीं। यदि संसार अवस्था में है-ऐसा कहो तो संसार अवस्था में भेद आदि है तो वह तो पुद्गलद्रव्य है-ऐसा कहा। आहाहा! वह भेद-पुद्गल, आत्मा के हैं (ऐसा कहो तो) पुद्गल, मोक्ष में भी रहेगा। आहाहा! ऐसी बातें हैं। बहुत सूक्ष्म बात भाई!

मुमुक्षु : समझ में आये ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो साधारण-भाषा तो बहुत सादी है। ये तीन शब्द भाई ने निकाले, वे इसमें से निकाले हैं। रंग, राग से भिन्न। भाई हुकमचन्दजी का क्षयोपशम बहुत है, फिर भी निर्मान व्यक्ति है, घमण्ड नहीं। आहाहा!

आत्मा है, उसे जानना, वह सम्यग्दर्शन है। वह आत्मा कैसा है? आहाहा! अभी तो प्रथम सम्यग्दर्शन की बात है। आहा! धर्म तो-चारित्र तो कहीं रह गया! यहाँ तो प्रथम सम्यग्दर्शन होता है तो किस प्रकार से होता है? उस सम्यग्दर्शन का विषय अभेद चैतन्य में भेद नहीं, राग नहीं, रंग नहीं। आहाहा! रंगरहित, रागरहित, भेदरहित! आहाहा! रंगसहित, रागसहित, भेदसहित, वह तो पुद्गल है। आहाहा! अरे! इसे बहुत धीर होना पड़ेगा, भाई!

आहा! शास्त्र का ज्ञान है, वह भी वास्तव में तो रूपी है। वह पुद्गल है—ऐसा यहाँ तो कहा। ऐई! आहाहा! यदि अपना ज्ञान हो, तब तो साथ में आनन्द आना चाहिए। यह तो पुद्गल है, दुःख है। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा, पंच महाव्रत के (विकल्प), छह काय की दया ली, परन्तु उसका अर्थ (यह कि) पंच महाव्रत के भाव सब पुद्गल हैं। आहाहा! वे यदि आत्मा हो जाये तो आत्मा, पुद्गल हो जाये। आहाहा! बहुत गजब बात की है। यथार्थ वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में तो ऐसा आता है कि सोलह भगवान कंचन वर्ण और एक भगवान श्याम वर्ण....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ही नहीं। कहा न, वह तो शरीर का गुणगान है। वहाँ लिया नहीं? वे आत्मा के नहीं। राजा की ऋद्धि के गुणगान हों, वे राजा के गुणगान नहीं। आहाहा! स्तुति में तो यह आया है। आहाहा! स्तुति, स्तुति आयी न? आहाहा! ये जड़ इन्द्रियाँ, भावेन्द्रियाँ और भगवान की वाणी तथा भगवान, ये सब इन्द्रिय में रखे हैं। आहाहा! और वाणी से अपनी पर्याय में जो ज्ञान हुआ, वह भी इन्द्रिय है। आहाहा! गजब बात है। उसे भी यहाँ तो पुद्गल कह दिया है। भाई! आहाहा!

ऐसा मानने से तो जीव का अभाव हो जाता है। आहाहा! शास्त्र का ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान है—ऐसा मानने से जीव का अभाव हो जाता है। आहाहा! दया, दान, व्रत के भाव, वे जीव के भाव हैं (-ऐसा मानने से तो) जीव का अभाव हो जाता है। आहाहा! मार्गणा में लिया न? ज्ञानमार्गणा, दर्शनमार्गणा, संयममार्गणा... आहाहा! उस मार्गणा की पर्याय को खोजना, वह पर्याय में है। वह मार्गणा पुद्गल के परिणाम है, ऐसा कहा है। आहाहा! आहाहा! ज्ञान के पाँच भेद, तीन अज्ञान के (भेद), इस भेद पर लक्ष्य जायेगा तो राग होगा; इसलिए इन्हें पुद्गल कहा है। ऐसे दर्शन-सम्यग्दर्शन, क्षायिकदर्शन, उपशम-दर्शन क्षयोपशम (दर्शन) ऐसे भेद पुद्गल के परिणाम (कहे हैं)। आहाहा! तीन में तो बहुत समाहित कर दिया है। रंग, राग और भेद। आहाहा! सन्तों की गम्भीर भाषा बहुत गूढ़-गूढ़, आहाहा! यथार्थ (है)।

गाथा ६५-६६

एवमेतत् स्थितं यद्वर्णादयो भावा न जीव इति-
 एकं च दोष्णि तिष्णि य चत्तारि य पंच इन्द्रिया जीवा।
 बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स॥६५॥
 एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्टाणा उ करणभूदाहिं।
 पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कंहं भण्णदे जीवो॥६६॥

एकं वा द्वे त्रीणि च चत्वारि च पंचेन्द्रियाणि जीवाः।
 बादरपर्याप्तेतराः प्रकृतयो नामकर्मणः॥
 एताभिश्च निर्वृत्तानि जीवस्थानानि करणभूताभिः।
 प्रकृतिभिः पुद्गलमयीभिस्ताभिः कथं भण्यते जीवः॥

निश्चयतः कर्मकरणयोरभिन्नत्वात् यद्येन क्रियते तत्तदेवेति कृत्वा, यथा कनकपत्रं कनकेन क्रियमाणं कनकमेव, न त्वन्यत्, तथा जीवस्थानानि बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियद्वित्रिचतुः पंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ताभिधानाभिः पुद्गलमयीभिः नामकर्मप्रकृतिभिः क्रियमाणानि पुद्गल एव, न तु जीवः। नामकर्मप्रकृतीनां पुद्गलमयत्वं चागमप्रसिद्धं दृश्यमानशरीरादिमूर्त-कार्यानुमेयं च। एवं गंधरसस्पर्शरूपशरीरसंस्थानसंहननान्यपि पुद्गलमयनामकर्मप्रकृति-निर्वृत्तत्वे सति तदव्यतिरेकाज्जीवस्थानैरेवोक्तानि। ततो न वर्णादयो जीव इति निश्चयसिद्धान्तः।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि वर्णादिक भाव जीव नहीं हैं, यह अब कहते हैं—

जीव एक-दो-त्रय-चार-पंचेन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म हैं।
 पर्याप्त अनपर्याप्त जीव जु नामकर्म की प्रकृति है ॥६५॥

जो प्रकृति यह पुद्गलमयी, वह करणरूप बने अरे।

उससे रचित जीवस्थान जो हैं, जीव क्यों हि कहाय वे ॥६६ ॥

गाथार्थ - [एकं वा] एकेन्द्रिय, [द्वे] द्वीन्द्रिय, [त्रीणि च] त्रीन्द्रिय, [चत्वारि च] चतुरिन्द्रिय, और [पंचेन्द्रियाणि] पंचेन्द्रिय, [बादरपर्याप्तेतराः] बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त और अपर्याप्त [जीवाः] जीव तथा-यह [नामकर्मणः] नामकर्म की [प्रकृतयः] प्रकृतियाँ हैं; [एताभिः च] इन [प्रकृतिभिः] प्रकृतियों [पुद्गलमयीभिः ताभिः] जो कि पुद्गलमयरूप से प्रसिद्ध हैं उनके द्वारा [करणभूताभिः] करणस्वरूप होकर [निर्वृत्तानि] रचित [जीवस्थानानि] जो जीवस्थान (जीवसमास) हैं, वे [जीवः] जीव [कथं] कैसे [भण्यते] कहे जा सकते हैं ?

टीका - निश्चयनय से कर्म और करण की अभिन्नता होने से, जो जिससे किया जाता है (-होता है) वह वही है - यह समझकर (निश्चय करके), जैसे सुवर्ण-पत्र सुवर्ण से किया जाता होने से सुवर्ण ही है, अन्य कुछ नहीं है, इसी प्रकार जीवस्थान बादर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त नामक पुद्गलमयी नामकर्म की प्रकृतियों से किये जाते होने से पुद्गल ही हैं, जीव नहीं हैं और नामकर्म की प्रकृतियों की पुद्गलमयता तो आगम से प्रसिद्ध है तथा अनुमान से भी जानी जा सकती है क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले शरीर आदि जो मूर्तिक भाव हैं, वे कर्म-प्रकृतियों के कार्य हैं, इसलिए कर्मप्रकृतियाँ पुद्गलमय हैं - ऐसा अनुमान हो सकता है।

इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शरीर, संस्थान और संहनन भी पुद्गलमय नामकर्म की प्रकृतियों के द्वारा रचित होने से पुद्गल से अभिन्न हैं; इसलिए, मात्र जीवस्थानों को पुद्गलमय कहने पर, इन सबको भी पुद्गलमय ही कथित समझना चाहिए।

इसलिए वर्णादिक जीव नहीं हैं, यह निश्चयनय का सिद्धान्त है।

गाथा - ६५-६६ पर प्रवचन

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि... रंग, राग और भेद जीव नहीं है। यह अब कहते हैं— ६५-६६ गाथा।

एकं च दोष्णि तिष्णि य चत्तारि य पंच इन्दिया जीवा।
बादरपज्जत्तिदरा पयडीओ णामकम्मस्स॥६५॥
एदाहि य णिव्वत्ता जीवट्टाणा उ करणभूदाहिं।
पयडीहिं पोग्गलमइहिं ताहिं कंहं भण्णदे जीवो॥६६॥

यहाँ जीवस्थान लेना है। जीवस्थान भी पुद्गल है। आहा! जीवस्थान भी पुद्गल है। जीवस्थान! आहाहा! मार्गणास्थान पुद्गल है, जीवस्थान पुद्गल है, गुणस्थान पुद्गल है। आहाहा! यहाँ तो दृष्टान्त इस जीव का दिया।

जीव एक-दो-त्रय-चार-पंचेन्द्रिय, बादर, सूक्ष्म हैं।
पर्याप्त अनपर्याप्त जीव जु नामकर्म की प्रकृति है ॥६५॥
जो प्रकृति यह पुद्गलमयी, वह करणरूप बने अरे।
उससे रचित जीवस्थान जो हैं, जीव क्यों हि कहाय वे ॥६६॥

आहाहा! टीका - निश्चयनय से कर्म और करण की अभिन्नता होने से,... आहाहा! कार्य और करण की अभिन्नता होने से। करण अर्थात् साधन और कर्म अर्थात् कार्य। कर्म और करण की अभिन्नता होने से, जो जिससे किया जाता है (-होता है), वह वही है - यह समझकर (निश्चय करके), जैसे सुवर्ण-पत्र सुवर्ण से किया जाता होने से... सोने का पत्र, पत्र उससे किया जाता है। सुवर्ण-पत्र सुवर्ण से... सुवर्ण का पत्र, हों! स्वर्णपत्र। सुवर्ण से किया जाता होने से सुवर्ण ही है,... स्वर्ण से पत्र हुआ तो वह स्वर्ण ही है। आहाहा! अन्य कुछ नहीं है, इसी प्रकार जीवस्थान बादर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त नामक पुद्गलमयी नामकर्म की... पुद्गलमयी नामकर्म की, हों! पुद्गल की - ऐसा नहीं। आहाहा! पुद्गलमयी नामकर्म की प्रकृतियों से किय जाते होने से पुद्गल ही हैं,... चौदह भेद पुद्गल ही हैं।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त, अपर्याप्त यह चौदह पुद्गल हैं। आहाहा! यह पर्याप्त जीव और यह अपर्याप्त जीव... आहाहा! जीव नहीं है...

पुद्गलमयी नामकर्म की प्रकृति करण होकर वह कर्म अर्थात् कार्य हुआ, इसलिए वह पुद्गल ही है। क्या कहा, समझ में आया? नामकर्म करण / साधन है। उसके यह चौदह भेद कार्य है। करण से कार्य हुआ तो वह पुद्गल से हुआ, नामकर्म पुद्गल है; इसलिए पुद्गल से भेद हुए। आहाहा! यहाँ से शुरु किया। जीवस्थान, ऐसा। जीव, जीवस्थान नहीं। आहाहा! जीव भगवान आत्मा, वह जीवस्थान में नहीं। आहाहा! जीव के प्रकार-भेद में जीव नहीं; इसलिए यह दृष्टान्त दिया कि नामकर्म करण है, वह करण होकर, साधन होकर पर्याप्त-अपर्याप्त का कार्य होता है, वह तो पुद्गल है, नामकर्म पुद्गल है तो उसका कार्य भी पुद्गल है। आहाहा! जीव नहीं....

नामकर्म की प्रकृतियों की पुद्गलमयता तो आगम से प्रसिद्ध है... पुद्गलमयपना, पुद्गलमय। आहाहा! आगम से प्रसिद्ध है... नामकर्म पुद्गल जड़ है न? आगम से प्रसिद्ध है कि वह पुद्गल है। अनुमान से भी जानी जा सकती है... कैसे? क्योंकि प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले शरीर आदि जो मूर्तिक भाव हैं, वे... मूर्तिक हैं। वे कर्म-प्रकृतियों के कार्य... है, जड़ का कार्य है। आहाहा! बादरपना, सूक्ष्मपना, एकेन्द्रियपना, दोइन्द्रियपना, पंचेन्द्रियपना, पर्याप्त और अपर्याप्त यह तो प्रत्यक्ष पुद्गल है तो ये पुद्गल का कार्य है। आहाहा! प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले शरीर आदि जो मूर्तिक भाव हैं, वे कर्म-प्रकृतियों के कार्य हैं, इसलिए कर्मप्रकृतियाँ पुद्गलमय हैं... पुद्गलमय है। पुद्गल है, ऐसा तीन बार लिया है। आहाहा! पुद्गलमय, आहाहा! पुद्गलमयता, पुद्गलमय-ऐसे तीन बार आया। ऐसा अनुमान हो सकता है। अनुमान भी हो सकता है और प्रकृति जड़ है तो उसका कार्य है, ऐसा भी सिद्ध होता है।

इसी प्रकार गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शरीर, संस्थान और संहनन भी पुद्गलमय नामकर्म की प्रकृतियों के द्वारा रचित होने से पुद्गल से अभिन्न हैं;... वे पुद्गलमय हैं। इसलिए, मात्र जीवस्थानों को पुद्गलमय कहने पर, इन सबको भी पुद्गलमय ही कथित समझना चाहिए। ऊपर के ये सब। इसलिए वर्णादिक जीव नहीं हैं, यह

निश्चयनय का सिद्धान्त है। लो! यह तो निश्चयनय का सिद्धान्त है। वे कहते हैं निश्चयनय सिद्ध को होता है। आहाहा! यह तो बहुत अन्तर है! वस्तुस्थिति ऐसी है, वहाँ... आहाहा! उसकी वापस सब लोगों ने महिमा की। व्यवहार साधक को होता है, निश्चय होता ही नहीं, निश्चय तो सिद्ध को होता है... यहाँ तो कहते हैं निश्चयनय से यह होता नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शनपना तो निश्चय के आश्रय से, स्वभाव के आश्रय से होता है, यह निश्चय है। शुद्धनय आया नहीं, ग्यारहवीं गाथा में? शुद्धनय के आश्रय से, निश्चयनय के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। शुद्धनय लिया है। शुद्ध कहो या निश्चय कहो, परमनिश्चय। आहाहा!

यहाँ सम्यग्दर्शन होता है, वही शुद्धनय अर्थात् परम आत्मस्वभाव के आश्रय से होता है। वह शुद्धनय का विषय है। आहा! ग्यारहवीं (गाथा) में कहा नहीं? 'भूदत्थो देसिदो सुद्धणओ' भूतार्थ है, वह शुद्धनय है। 'ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ' जो भूतार्थ है, वही शुद्धनय है, त्रिकाली वस्तु है, वह शुद्धनय है-ऐसा कहा। आहाहा! आहाहा! फिर कहा कि शुद्धनय का आश्रय। 'भूदत्थमस्सिदो खलु' तीसरा पद। परन्तु पहले तो कहा कि जो त्रिकालीवस्तु है, वही निश्चयनय है और वही शुद्धनय है। आहाहा! समझ में आया? बहुत सूक्ष्म विषय! आहाहा! गजब किया है। सादी भाषा में कितनी गम्भीरता! आया न यह? अब श्लोक कहते हैं, नहीं? ३८

कलश-३८

यहाँ इसी अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं —

निर्वर्त्यते येन यत्र किञ्चित्
तदेव तत्स्यान्न कथंचनान्यत्।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं
पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिम्॥३८॥

श्लोकार्थ - [येन] जिस वस्तु से [अत्र यद् किञ्चित् निर्वर्त्यते] जो भाव बने,

[ततः] वह भाव [तद् एव स्यात्] वह वस्तु ही है, [कथंचन] किसी भी प्रकार [अन्यत् न] अन्य वस्तु नहीं है; [इह] जैसे जगत में [रुक्मेण निर्वृत्तम् असिकोशं] स्वर्ण निर्मित म्यान को [रुक्मं पश्यन्ति] लोग स्वर्ण ही देखते हैं, (उसे) [कथंचन] किसी प्रकार से [न असिम्] तलवार नहीं देखते ।

भावार्थ - वर्णादि पुद्गल-रचित हैं, इसलिए वे पुद्गल ही हैं, जीव नहीं ॥३८ ॥

कलश - ३८ पर प्रवचन

निर्वर्त्यते येन यत्र किञ्चित्
तदेव तत्स्यान्न कथंचनान्यत्।
रुक्मेण निर्वृत्तमिहासिकोशं
पश्यन्ति रुक्मं न कथंचनासिम्॥३८॥

जिस वस्तु से जो भाव बने,... जिस वस्तु जो भाव बने... वस्तु से । वह भाव वह वस्तु ही है,... आहाहा! किसी भी प्रकार अन्य वस्तु नहीं है;... किसी भी प्रकार से अन्य वस्तु नहीं-ऐसा कहते हैं । आहाहा! जैसे जगत में स्वर्ण निर्मित म्यान को... सोने से म्यान (बनी) उसे लोग स्वर्ण ही देखते हैं,... आहाहा! सोने की म्यान को सोनारूप से देखते हैं । उसमें तलवार रही है और तलवार सोने में नहीं देखते । आहाहा! तलवार भिन्न है और सोने की म्यान भिन्न है । आहाहा! इसी प्रकार रंग, राग और भेद, ये पुद्गल से हुए हैं । आहाहा! उससे भगवान तो भिन्न है-ऐसा कहते हैं । वह तलवार जैसे सोने की म्यान से भिन्न है । आहाहा! सोने की म्यान सोनारूप से ही लोग देखते हैं, तलवार नहीं देखते । इसी प्रकार भेद, रंग और राग, वे पुद्गल के कर्म के हुए हैं तो उन्हें पुद्गल देखते हैं । आहाहा! भेद, रंग और राग से भिन्न अभेद को लोग नहीं देखते । अभेद तलवार जैसे भिन्न है, वैसे यह अभेद भिन्न है । आहाहा! बनियों को संसार के कारण ऐसा निर्णय करने का समय नहीं मिलता । आहाहा! अभी तो बनियों को यह धर्म मिला है न! आहाहा! क्या कहा ?

सोने की म्यान है तो लोग सोने को देखते हैं, तलवार को नहीं देखते । सोने की तलवार है-ऐसा कहते हैं । सोने की तलवार, सोने की तलवार है ? आहाहा! इसी प्रकार

भगवान आत्मा को भेद, रंग और राग-जैसे सोने की म्यान है, वैसे ये पुद्गल के हैं, पुद्गल से हुए हैं तो ये पुद्गल के हैं। ये आत्मा हैं, ऐसा नहीं देखते। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म कठिन, भाई! एक-एक गाथा... आहाहा! आहाहा!

लोग सोने की तलवार को सोना देखते हैं, तलवार को नहीं देखते। इसी प्रकार आत्मा में जो राग, रंग और भेद दिखते हैं, वे पुद्गल हैं। उस पुद्गल से, जैसे तलवार म्यान से भिन्न रहती है, वैसे आत्मा भिन्न है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! आहाहा! ऐसी बात कहाँ है? यह परम सत्य। इस टीका का नाम आत्मख्याति है न! आहाहा! भेद, राग, रंग जैसे सोने की म्यान है, उसे सोने की म्यान देखते हैं, वह सोने की तलवार है, ऐसा नहीं देखते; वैसे भेद, रंग और राग पुद्गल के हैं। वे पुद्गल के हैं, ऐसा देखते हैं। उससे भिन्न भगवान आत्मा है, उसमें नहीं देखते, उस आत्मा के भेद, रंग, राग है - ऐसा नहीं देखते। आहाहा! ऐसी सूक्ष्म बातें! आहाहा! अरे! कितनी योग्यता अन्दर चाहिए।

कहते हैं, सोने की म्यान को कोई सोने की तलवार कहता है, वह तो व्यवहार-उपचार से कहता है, वह वस्तु नहीं। आहाहा! इसी तरह भगवान आत्मा में शरीर, वाणी, मन, रंग, राग, द्वेष, पुण्य-पाप के भाव और भेद पुद्गल से बने हुए हैं। आहाहा! तो पुद्गल के हैं, ऐसा देखता है; जीव के हैं, ऐसा नहीं देखता। ऐसी बातें अब, कहाँ पहुँचना? शास्त्र में भाषा ऐसी आवे, (कि) एकेन्द्रिय जीव, दोन्द्रिय जीव, पर्याप्त जीव, अपर्याप्त जीव। देखो! ये जीव नहीं, छह काय के जो हैं, वे जीव नहीं। जीव तो ज्ञानस्वरूप है। है न अन्दर? आहाहा! अभी तो यहाँ नवतत्त्व में जीवतत्त्व कैसा है, उसकी बात चलती है। आहाहा! उस जीवतत्त्व को भेद, रंग और राग से जानो तो वह तो पुद्गल है, ऐसा कहते हैं। भगवान तो उनसे निराला-भिन्न है। आहाहा!

भावार्थ - वर्णादि पुद्गल-रचित हैं... भेद, रंग और राग पुद्गल से बनते हैं। इसलिए वे पुद्गल ही हैं, जीव नहीं। आहाहा!

कलश-३९

अब दूसरा कलश कहते हैं :—

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदंतु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः॥३९॥

श्लोकार्थ - अहो ज्ञानी जनों! [इदं वर्णादिसामग्र्यम्] ये वर्णादिक से लेकर गुणस्थानपर्यन्त भाव हैं, उन समस्त को [एकस्य पुद्गलस्य हि निर्माणम्] एक पुद्गल की रचना [विदन्तु] जानो; [ततः] इसलिए [इदं] यह भाव [पुद्गलः एव अस्तु] पुद्गल ही हों, [न आत्मा] आत्मा न हों; [यतः] क्योंकि [सः विज्ञानघनः] आत्मा तो विज्ञानघन है, ज्ञान का पुंज है, [ततः] इसलिए [अन्यः] वह इन वर्णादिक भावों से अन्य ही है ॥३९॥

कलश - ३९ पर प्रवचन

दूसरा कलश। इसमें तो गुणस्थान को भी साथ में डाला है। कहा, आया है तो तीनों में... (कलश ३९)

वर्णादिसामग्र्यमिदं विदंतु
निर्माणमेकस्य हि पुद्गलस्य।
ततोऽस्त्विदं पुद्गल एव नात्मा
यतः स विज्ञानघनस्ततोऽन्यः॥३९॥

आहाहा! श्लोकार्थ - अहो ज्ञानी जनों!... आहाहा! ये वर्णादिक से लेकर गुणस्थानपर्यन्त... २९ बोल आये न अन्दर? सब आ गये। गुणस्थान अन्त में है, पहला वर्ण है। पहला वर्ण-रंग है, अन्त में गुणस्थान है। २९ बोल आ गये। आहाहा! शुभराग आया, संयमलब्धि के भेद आये। आहाहा! हे ज्ञानीजनों! ये रंग, राग, भेद और गुणस्थानपर्यन्त

(भाव हैं वे) समस्त को एक पुद्गल की रचना जानो;... आहाहा! ये मार्गणास्थान, जीवस्थान, गुणस्थान... आहाहा! पुद्गल की रचना जानो। आहाहा! भगवान इनमें आया नहीं। चैतन्यभगवान भेद में आया नहीं, रंग में आया नहीं, राग में आया नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : श्रद्धा और ज्ञान में पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तर है न! पर्याय है, वह तो स्व की अपेक्षा से निश्चय कहा। बाकी विकल्प की अपेक्षा से भेद है। वास्तविक अभेद स्वभाव की अपेक्षा से तो वह पुद्गल है। आहाहा! एक ओर तो ऐसा भी कहते हैं कि उसमें भेद है, वह जीव का है। भेद स्वरूप ही है। ज्ञान के पाँच भेद आते हैं, वह ज्ञान कराना है। अभेद की दृष्टि हुई, उसे ज्ञान कराना है। आहाहा!

यहाँ तो अभी पहले अभेददृष्टि करानी है। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में रंग, राग, और भेद से निराला है। उसे यहाँ आत्मा कहा जाता है। वहाँ यह शब्द पड़ा है। ज्ञानानन्दस्वभावी मैं हूँ, उसमें निराला हूँ, फिर अखण्ड पूर्ण एक हूँ-ऐसा है। भाई ने अच्छा किया है, हुकमचन्दजी ने इसकी शैली ली है। रंग, गंध से लेकर गुणस्थानपर्यन्त अर्थात् ये २९ बोल। ५० से ५५ गाथा। उन समस्त को 'एकस्य पुद्गलस्य हि निर्माणम्'... देखो! एक पुद्गल की रचना... एक पुद्गल की रचना, आत्मा की कोई रचना नहीं। आहाहा! कितना स्पष्ट कर दिया है! ये गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीवस्थान, राग-द्वेष, पुण्य-पाप के भाव, वे एक पुद्गल की रचना जानो। आहाहा! ऐसी बात है। ज्ञायक, अभेद। आहाहा!

'एकस्य पुद्गलस्य हि' है? शब्द तो यह है। एक पुद्गल की रचना जानो;... परन्तु पाठ में तो 'एकस्य पुद्गलस्य हि' ऐसा जोर है। एक पुद्गल की रचना, इतना आया, इसमें एक पुद्गल की ही रचना जानो। निश्चय। आहाहा! आहाहा! यह पुद्गल की ही... एकान्त (किया है)। कथंचित् पुद्गल की और कथंचित् जीव की (-ऐसा नहीं कहा)। आहाहा! क्या शैली! 'एकस्य पुद्गलस्य' वापस ऐसा। 'एकस्य पुद्गलस्य हि निर्माणम्' रचना। आहाहा! गुणस्थान, मार्गणास्थान एक ही, पुद्गल ही की रचना है। आहाहा! कलश ऐसा साधारण लगे परन्तु अन्दर कितना भरा है! ओहोहो!

मुमुक्षु : इसमें स्याद्वाद का लोप नहीं हो गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्याद्वाद कहा न ! निश्चय से यह है और पर्याय में है, इसलिए व्यवहार कहा । यह स्याद्वाद, परन्तु यह निश्चय जिसे हुआ, उसे पर्याय का सच्चा ज्ञान होता है । आहाहा ! अनेकान्त भी सम्यक् एकान्त के अतिरिक्त (अन्य हेतु से उपकारी नहीं) । आहाहा ! अभेद सम्यक् एकान्त जो है, वह सम्यक् एकान्त है । उसका ज्ञान होने से पर्याय और रागादि है, उनका ज्ञान होता है, अनेकान्तरूप से (ज्ञान होता है) । सम्यक् एकान्त का ज्ञान हुआ तो उसमें अनेकान्त का ज्ञान हो जाता है । आहाहा ! परन्तु पहले सम्यक् एकान्त का ज्ञान नहीं, उसे तो यह राग मेरी पर्याय है, उसका ज्ञान नहीं । उसे व्यवहार ज्ञान आया कहाँ से ?

उन समस्त को... रंग से लेकर गंध, रस, स्पर्श, अध्यवसाय... आहाहा ! संहनन, संस्थान, संक्लेशपरिणाम, असंक्लेशपरिणाम, शुभपरिणाम... आहाहा ! वे सब जीव के निवृत्तिस्थान, लब्धि आदि एक ही पुद्गल की रचना जानो । आहाहा ! यह निश्चयनय का सिद्धान्त है । परमशुद्धनय । आहा ! **एक पुद्गल की रचना जानो ; इसलिए यह भाव...** यह भाव 'पुद्गलः एव अस्तु' पुद्गल ही हों, ... समझ में आया ? कितना स्पष्ट ! अमृतचन्द्राचार्य ने टीका की और टीका पर कलश चढ़ाया ! आहाहा !

नियमसार में तो क्षायिकभाव, क्षयोपशमभाव को भी परद्रव्य कह दिया है । आहाहा ! त्रिकाल ज्ञायकभाव में वे नहीं हैं । इस अपेक्षा से (परद्रव्य कहा है) । जीव में है नहीं, क्षायिकभाव जीव में नहीं, वहाँ गुणस्थान, मार्गणास्थान की बात कहाँ ? आहाहा ! और वहाँ परद्रव्य कहा है, ऐसा मुझे कहना है । गुणस्थान जीव में नहीं, यह तो ठीक, परन्तु क्षायिकभाव को, क्षयोपशम को उपशम को, परद्रव्य कहा है । आहाहा ! स्वद्रव्य भगवान् अखण्डानन्द अभेद... आहाहा !

मुमुक्षु : कुन्दकुन्दाचार्य की बात में अमृतचन्द्राचार्य और पद्मप्रभमलधारिदेव ने पुष्टि की है ।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबने एक ही कहा है न ! पद्मनन्दि ने भी यह कहा है वह निश्चय और व्यवहार डाला है । 'जो पस्सदि अप्पाणं' वहाँ लिखा है । दिगम्बर आचार्य चाहे जो हों, उन्होंने तो एक ही सिद्धान्त सिद्ध किया, वही सबने किया है । कहीं व्यवहार से भले

बात की हो परन्तु व्यवहार जानने के लिये कहा है, आश्रय करने के लिये नहीं। आहाहा! वहाँ पद्मनन्दि में तो व्यवहार को पूज्य कहा है, व्यवहार से पूज्य है, क्योंकि देव-गुरु-शास्त्र, भगवान साक्षात् हैं, वे व्यवहार से पूज्य न हों तो फिर (पूज्यपना) नहीं रहता। भगवान! व्यवहार से व्यवहार पूज्य है, निश्चय से नहीं। आहाहा!

आत्मा कौन है? पुद्गल ही हों, आत्मा न हों;... क्यों? क्योंकि 'सः विज्ञानघनः' भगवान तो विज्ञानघन है। आहाहा! देखो! अभेद लिया। अकेला विज्ञानघन है। आहाहा! ज्ञान का तो पुंज है, अकेला पुंज है, अकेला ज्ञान का पुंज है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। भेद भी निकल गये न? रंग, राग तो निकल गये परन्तु भेद भी निकल गये। 'सः विज्ञानघनः' सः अर्थात् यह, आत्मा तो... ऐसा कहकर डाला है। विज्ञानघन है,... आहाहा! 'न आत्मा' तब आत्मा कौन है? यह भेद, रंग, राग आदि आत्मा नहीं तो आत्मा कौन? 'सः विज्ञानघनः' वह तो विज्ञानघन है,... आहाहा! 'न आत्मा' 'पुद्गलः एव अस्तु न आत्मा' वे भेद आदि। 'सः विज्ञानघनः' आहाहा! प्रभु! भगवान आत्मा तो विज्ञानघन है न! आहाहा! राग तो नहीं, रंग तो नहीं परन्तु भेद भी नहीं। आहाहा! वह तो विज्ञानघन है न! उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? जो दृष्टि का विषय विज्ञानघन है, उसे आत्मा कहते हैं।

इसलिए वह इन वर्णादिक भावों से अन्य ही है। है न? 'सः विज्ञानघनः ततः अन्यः' दूसरी सब चीज़ उससे अन्य है। वर्णादिक भावों से अन्य ही है। ऐसा। भेद आदि अन्य ही है, राग से अन्य ही है। आहाहा! वर्णादिक भावों से अन्य ही है। वह अन्य ही है, वापस (ऐसा कहा)। आहाहा!

गाथा ६७

शेषमन्यद्वयवहारमात्रम्-

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।
 देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता॥६७॥
 पर्याप्तापर्याप्ता ये सूक्ष्मा बादराश्च ये चैव।
 देहस्य जीवसंज्ञाः सूत्रे व्यवहारतः उक्ताः॥

यत्किल बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियद्वित्रिचतुःपंचेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्ता इति शरीरस्य संज्ञाः सूत्रे जीवसंज्ञात्वेनोक्ताः अप्रयोजनार्थः परप्रसिद्ध्या घृतघटवद्वयवहारः। यथा हि कस्यचिदाजन्मप्रसिद्धैकघृतकुम्भस्य तदितरकुम्भानभिज्ञस्य प्रबोधनाय योऽयं घृतकुम्भः स मृण्मयो न घृतमय इति तत्प्रसिद्ध्या कुम्भे घृतकुम्भव्यवहारः, तथास्याज्ञानिनो लोकस्यासंसारप्रसिद्धाशुद्धजीवस्य शुद्धजीवानभिज्ञस्य प्रबोधनाय योऽयं वर्णादिमान् जीवः स ज्ञानमयो न वर्णादिमय इति तत्प्रसिद्ध्या जीवे वर्णादिमद्वयवहारः।

अब, यह कहते हैं कि इस ज्ञानघन आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ है, उसे जीव कहना, सो सब व्यवहारमात्र है —

पर्याप्त अनपर्याप्त जो, हैं सूक्ष्म अरु बादर सभी।
 व्यवहार से कही जीवसंज्ञा, देह को शास्त्रन महीं ॥६७॥

गाथार्थ - [ये] जो [पर्याप्तापर्याप्ताः] पर्याप्त, अपर्याप्त [सूक्ष्माः बादराः च] सूक्ष्म और बादर आदि [ये च एव] जितनी [देहस्य] देह की [जीवसंज्ञाः] जीव-संज्ञा कही हैं, वे सब [सूत्रे] सूत्र में [व्यवहारतः] व्यवहार से [उक्ताः] कही हैं।

टीका - बादर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय,

पर्याप्त, अपर्याप्त — इन शरीर की संज्ञाओं को (नामों को) सूत्र में जीवसंज्ञारूप से कहा है, वह, पर की प्रसिद्धि के कारण, 'घी के घड़े' की भाँति व्यवहार है कि जो व्यवहार अप्रयोजनार्थ है (अर्थात् उसमें प्रयोजनभूत वस्तु नहीं है)। इसी बात को स्पष्ट कहते हैं —

जैसे किसी पुरुष को जन्म से लेकर मात्र 'घी का घड़ा' ही प्रसिद्ध (ज्ञात) हो, उसके अतिरिक्त वह दूसरे घड़े को न जानता हो, उसे समझाने के लिए "जो यह 'घी का घड़ा' है सो मिट्टीमय है, घीमय नहीं" — इस प्रकार (समझानेवाले के द्वारा) घड़े में घी के घड़े का व्यवहार किया जाता है, क्योंकि उस पुरुष को 'घी का घड़ा' ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है; इसी प्रकार इस अज्ञानी लोक को अनादि संसार से लेकर 'अशुद्ध जीव' ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है, वह शुद्ध जीव को नहीं जानता, उसे समझाने के लिए (शुद्ध जीव का ज्ञान कराने के लिए) "जो यह 'वर्णादिमान जीव' है, सो ज्ञानमय है, वर्णादिमय नहीं" इस प्रकार (सूत्र में) जीव में वर्णादिमानपने का व्यवहार किया गया है, क्योंकि उस अज्ञानी लोक को 'वर्णादिमान जीव' ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है।

गाथा-६७ पर प्रवचन

अब, यह कहते हैं कि इस ज्ञानघन आत्मा के अतिरिक्त जो कुछ है, उसे जीव कहना, सो सब व्यवहारमात्र है — देखा? आहाहा!

पज्जत्तापज्जत्ता जे सुहुमा बादरा य जे चेव।

देहस्स जीवसण्णा सुत्ते ववहारदो उत्ता॥६७॥

पर्याप्त अनपर्याप्त जो, हैं सूक्ष्म अरु बादर सभी।

व्यवहार से कही जीवसंज्ञा, देह को शास्त्रन महीं॥६७॥

शास्त्र में तो यह कहा है।

टीका - बादर जीव, सूक्ष्म जीव, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, अपर्याप्त — इन शरीर की संज्ञाओं को... ये तो शरीर के नाम हैं, ये आत्मा के नहीं। आहाहा! इन शरीर की संज्ञाओं को (नामों को) सूत्र में जीवसंज्ञारूप

से कहा है,... आहाहा! क्या कहा? यह बादर, सूक्ष्म, एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जो कहा... आहाहा! वह तो शरीर की संज्ञा से सूत्र में कहा है। शरीर के नाम से जीव का नाम कहा है। शरीर के नाम से जीव का नाम कहा है। आहाहा! वह, पर की प्रसिद्धि के कारण,... किस कारण से कहा? कि यही प्रसिद्ध है। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, बादर और पर्याप्त,... आहाहा!

‘घी के घड़े’ की भाँति व्यवहार है... आहाहा! जैसे घी का घड़ा प्रसिद्ध है। घी प्रसिद्ध है? आहाहा! ‘घी के घड़े’ की भाँति व्यवहार है कि जो व्यवहार अप्रयोजनार्थ है... प्रयोजनार्थ नहीं। आहाहा! जानना, परन्तु उसमें प्रयोजन नहीं है। आहाहा! घी का घड़ा क्यों (कहा)? घी का घड़ा प्रसिद्ध है। घी की प्रसिद्धि नहीं। घी का घड़ा (प्रसिद्ध है) इसी प्रकार आहारक शरीर का नाम जीव के नाम से प्रसिद्ध है, इसलिए कहा। वस्तु ऐसी नहीं। आहाहा! अभी तो एक जीव को कैसा कहना, यह पहले तत्त्व की बात है। आहाहा! ‘घी के घड़े’ की भाँति व्यवहार है कि जो व्यवहार अप्रयोजनार्थ है (अर्थात् उसमें प्रयोजनभूत वस्तु नहीं है)। इसी बात को स्पष्ट कहते हैं— आहाहा! ऐसा क्यों कहा? जीव की संज्ञा में शरीर के नाम से क्यों कहा? पर्याप्त, अपर्याप्त यह शरीर संज्ञा / नाम है, उसे जीव के नाम से क्यों कहा? क्योंकि जगत ऐसा ही प्रसिद्धरूप से देखता है। देखता है इसलिए कहा। आहाहा! जगत घी का घड़ा देखता है; घी है, ऐसा नहीं देखता। पानी का घड़ा, घी का घड़ा, दूध का घड़ा, यह अज्ञानी को प्रसिद्ध है न, ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार बादरजीव, पर्याप्त जीव बाहर में प्रसिद्ध है, (मूल) चीज प्रसिद्ध नहीं है। आहाहा!

जैसे किसी पुरुष को जन्म से लेकर... अब दृष्टान्त देते हैं। ‘घी का घड़ा’ ही प्रसिद्ध (ज्ञात) हो,... देखो! उसे तो घी का घड़ा ही ख्याल में है। किसी पुरुष को जन्म से लेकर मात्र ‘घी का घड़ा’... आहाहा! घी का घड़ा ही प्रसिद्ध है। उसके अतिरिक्त वह दूसरे घड़े को न जानता हो,... वह दूसरे घड़े को नहीं जानता; वह घड़े को तो नहीं जानता। घी का घड़ा, घी का घड़ा – ऐसा (जानता है)। उसे समझाने के लिए “ जो यह ‘घी का घड़ा’ है सो मिट्टीमय है,... आहाहा! क्या कहा? देखा? दूसरे घड़े को जानता न हो। दूसरा घड़ा जानता न हो, घी का घड़ा, घी का घड़ा, पानी का घड़ा, मधु का घड़ा यह कुछ जानता

नहीं। यह घी का घड़ा, ऐसा उसे समझाने के लिए “जो यह ‘घी का घड़ा’ है... वापस भाषा क्या है? ‘घी का घड़ा’ है, सो मिट्टीमय है, ... प्रसिद्धि के कारण से पहले ऐसा कहा। घी का घड़ा उसे जन्म से प्रसिद्ध है तो उसे उस शब्द से कहा कि यह घी का घड़ा मिट्टीमय है। आहाहा! दूसरे घड़े को जानता नहीं था। पानी का घड़ा (जानता नहीं था)। यह घी का घड़ा, घी का घड़ा एक ही देखता था। आहाहा!

उससे कहा, यह ‘घी का घड़ा’ है सो मिट्टीमय है, ... घी का घड़ा है, वह मिट्टीमय है। घीमय नहीं... आहाहा! यह घड़ा घीमय नहीं। घी का घड़ा है, वह मिट्टीमय है, वह घीमय नहीं। आहा! समझाने में इस प्रकार लिया। इस प्रकार (समझानेवाले के द्वारा) घड़े में घी के घड़े का व्यवहार किया जाता है, ... देखा? घड़े में घी के घड़े का व्यवहार किया जाता है। घड़े में घी के घड़े का व्यवहार किया जाता है। क्योंकि उस पुरुष को ‘घी का घड़ा’ ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है; ... पहली बात ली थी न? जन्म से लेकर मात्र ‘घी का घड़ा’ ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है, ... आहाहा!

इसी प्रकार इस अज्ञानी लोक को... आहाहा! अनादि संसार से लेकर ‘अशुद्ध जीव’ ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है, ... आहाहा! बादर और पर्याप्त और अपर्याप्त... इस प्रकार से अनादि से प्रसिद्ध है, इसकी दृष्टि वहाँ है न! आहाहा! ‘अशुद्ध जीव’ ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है, वह शुद्ध जीव को नहीं जानता, ... जैसे उसे घी का घड़ा प्रसिद्ध है, वह अन्य घड़े को नहीं जानता और घी को नहीं जानता। घी का घड़ा। घड़ा है तो मिट्टी का; उसे जानता नहीं। घी का घड़ा, घी का घड़ा... घी का घड़ा नहीं, घड़ा तो मिट्टी का है। घी का घड़ा कहकर मिट्टीमय घड़ा है, ऐसा कहा। आहाहा! ‘घी का घड़ा’ ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है; इसी प्रकार इस अज्ञानी लोक को अनादि संसार से लेकर ‘अशुद्ध जीव’ ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है, वह शुद्ध जीव को नहीं जानता, उसे समझाने के लिए शुद्ध जीव का ज्ञान कराने के लिए “जो यह ‘वर्णादिमान जीव’ है, सो ज्ञानमय है, ... आहाहा! वर्णादिमान जीव है-ऐसा कहकर, वह ज्ञानमय है (ऐसा कहना है)। वर्णादिमान तो उसे प्रसिद्ध है तो (ऐसा कहा कि) वर्णादिमान जीव है, वह ज्ञानमय है। लो! यह तो गौतम ने कहा, भाई! ऐई! चेतनजी! धवल में समझाने के लिये व्यवहार से कहा है। आहाहा! वहाँ ऐसा कहे, देखो! व्यवहार

से भी लाभ होता है। अरे! आहाहा! क्या हो? जगत की स्वच्छन्दता का पार नहीं होता। आहाहा!

वह शुद्ध जीव को नहीं जानता, उसे समझाने के लिए शुद्ध जीव का ज्ञान कराने के लिए... देखा? शुद्ध जीव का ज्ञान कराने के लिये, जो यह 'वर्णादिमान जीव' है, सो ज्ञानमय है,... वर्णादिमान जीव है, वह ज्ञानमय है - ऐसा व्यवहार से बताया। आहाहा! वह वर्णादिमय नहीं... वह ज्ञानमय भगवान है। भेद नहीं, राग नहीं, रंग नहीं। आहाहा! इस प्रकार (सूत्र में) जीव में वर्णादिमानपने का व्यवहार किया गया है,... वर्णादिमान का व्यवहार किया गया है। क्योंकि उस अज्ञानी लोक को 'वर्णादिमान जीव' ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है। इस कारण से—उसे प्रसिद्ध है इसलिए, वर्णादिमान कहकर, वह ज्ञानमय है (ऐसा) यह व्यवहार कहा गया है। परन्तु व्यवहार कहा है, इसलिए वह सत्य है और उससे लाभ है, ऐसा नहीं है। उसका ज्ञान होता है न? परन्तु ज्ञान होता है, वह तो उसे समझ में आता है। वर्णादिमान नहीं, ज्ञानमय है, यह व्यवहार से ज्ञान हुआ परन्तु उसे व्यवहार आदरणीय है और अनुसरण करनेयोग्य है, ऐसा नहीं है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)